International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 07-01-2021, Accepted: 22-01-2022, Published: 07-02-2022
Volume 4, Issue 1, 2022, Page No. 6-9

मनुस्मृति में वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं, कर्म से मान्य है

अजित कुमार
लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
मनुस्मृति में अनेक स्थलों पर स्पष्ट और सांकेतिक रूप में ऐसे वर्णन हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि मनु वर्णव्यवस्था का निर्धारण मूलतः कर्म से मानते हैं, जन्म से नहीं। किसी भी वर्ण में उत्पन्न बालक को माता–पिता अपने वर्ण या अन्य किसी भी वर्ण में दीक्षित करा सकते हैं, किन्तु शैक्षणिक काल में अन्ततः वर्ण का निश्चय, उसके गुण, कर्म, स्वभाव–संस्कार आदि के आधार पर आचार्य करता है। बाद में कर्मों या व्यवसाय के आधार पर उसमें परिवर्तन हो सकता है।

मूल शब्दः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णव्यवस्था, मनुस्मृति

प्रस्तावना
कर्म से वर्णव्यवस्था के विधायक या संकेतक स्थलों को प्रदर्शित करने वाले निम्न स्थल मनुस्मृति में प्राप्त हैं। ये सभी मनुस्मृति की आधारभूत भावना के अनुरूप, संकेतित विषय के अन्तर्गत, प्रसंगसम्मत और शैली के अनुकूल हैं– 1.31, 87–91, 2.36–39, 103, 126. 168 4.245, 10.65।।
इन सभी स्थलों का अनुशीलन और विश्लेषण करने के अनन्तर इस विषयक निम्न निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं–
1. (क) यदि मनु जन्म से ही किसी वर्ण को श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ मानते तो उन्हें वर्णों के कर्मों का निश्चय करने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि जो व्यक्ति जन्म के आधार पर ही श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ माना जा रहा है तो वह वैसा ही रहेगा, चाहे कर्म करे या न करे। शैशवावस्था और कौमार्यावस्था में भी वह वर्णों के लिए प्रतिपादित कर्मों को नहीं करता है, अपितु बहुत बार तो अज्ञान में विरोधी कर्म भी कर देता है। जब उस अवस्था में उसे जन्मतः ब्राह्मण या धर्म की प्रत्यक्ष मूर्ति माना जा रहा है[1] तो बाद में कर्मों के न करने या विरोधी कर्मों के करने से भी उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होना चाहिए। लेकिन मनुस्मृति के सभी विधि–निषेध वचनों, व्यवस्थाओं और वर्णों के लिए कर्मों के निश्चय से स्पष्ट होता है कि मनु धर्म–अधर्म, कर्म और अवस्थाओं से ही वर्णव्यवस्था या व्यक्ति की श्रेष्ठता मानते हैं, जन्म से नहीं। यदि जन्म से ही श्रेष्ठत्व स्वीकार कर लिया जाये तो मनुस्मृति की सम्पूर्ण कर्मव्यवस्था ही व्यर्थ हो जायेगी। कोई पालन करे या न करे व्यवस्थाओं का कोई महत्त्व ही नहीं रहेगा, क्योंकि उनका श्रेष्ठत्व–अश्रेष्ठत्व तो जन्म से ही निर्धारित हो ही चुका। लेकिन मनु ने कर्म के आधार पर वर्णव्यवस्था मानी हैं निम्न श्लोकों में उनकी अत्यधिक स्पष्ट घोषणा द्रष्टव्य है–

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।[2]

अर्थात्– श्रेष्ठ–अश्रेष्ठ कर्मों के अनुसार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है अर्थात् गुणकर्मों के अनुकूल कोई ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहता है तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शूद्र के घर उत्पन्न भी मूर्ख हो तो वह शूद्र रहता है और जो उत्तम गुणयुक्त हो तो यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य का भी वर्ण–परिवर्तन समझना चाहिए।

कर्मणा वर्णव्यवस्था का अतिस्पष्ट विधान
मनु ने इस श्लोक में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में वर्णव्यवस्था को कर्मों पर आधारित माना है। इस मान्यता के सम्बन्ध में अन्य विवेचन 2.31, 87–91ऋ 107, 11.114 श्लोकों में देखिये।

श्लोक की पुष्टि में प्रमाण
प्राचीन काल में कर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचलित थी। इसके अनेक प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इसी मान्यता को स्पष्ट किया है–

''धर्मचर्य्यया अघन्यो वर्णः पूर्व पूर्व वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।।1।।
अधर्मचर्य्यया पूर्वा वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।2।।[3]

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम–उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस–जिस के योग्य होवे।।1।।

वैसे अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे–नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे।।2।।[4]

(2) अपने धर्म–कर्मों को पालन न करने पर कोई भी व्यक्ति शूद्र बन जाता है, ऐसा मनु का मत है। यथा– (अ) वेद न पढ़ने पर द्विज शूद्रता को प्राप्त करता है।[5] (आ) सन्ध्योपासना न करने वाला व्यक्ति शूद्रवत होता है।[6] (इ) यथोक्त आयु सीमा तक उपनयन में दीक्षित न होकर द्विज न बनने वाले व्यक्ति 'व्रात्य' संज्ञक शूद्र कहलाते हैं । (ई) नीचों की संगति से ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त करता है।[7] इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि न तो मनु ने व्यक्ति को जन्म से ही अश्रेष्ठ माना है और न जन्मना आधार पर वर्णव्यवस्था मानी है, यदि जन्मना इनका निर्धारण होता तो उक्तरूप से वे निम्न वर्ण वाले न बनते।

(3) इसके साथ ही शूद्रता को प्राप्त व्यक्ति यदि अपने कर्मों को सुधार लेता है और त्रुटियों के लिए प्रायश्चित कर लेता है तो वह पुनः अपने वर्ण का हो सकता है। मनु ने यह मान्यता 'व्रात्य' संज्ञक शूद्रों के लिए और वर्णविरूद्ध कार्यों के कारण ब्राह्मण–वर्ण से बहिष्कृत ब्राह्मणों के लिए विहित प्रायश्चितों में प्रकट की है।[8] इस व्यवस्था से भी मनु की वर्णव्यवस्था कर्मानुसार ही सिद्ध होती है।

(4) मनु ने व्यक्ति की प्रतिष्ठा और बड़प्पन, गुणों की योग्यता के आधार पर माना है।[9] मनु की यह मान्यता भी यह स्पष्ट करती है कि मनु जन्म के आधार पर श्रेष्ठता या उच्चता अथवा वर्णव्यवस्था नहीं मानते, अपितु कर्म या गुणों को ही आधार मानते हैं।

(5) मनु ने वर्णों के कर्म बतलाते हुए ''लोकानां विवृद्धयर्थम्''[10] (समाज की वृद्धि के लिए) और ''सर्वस्यास्य तु गुप्त्यर्थम्''[11] (इस समस्त जगत् की सुरक्षा के लिए) को कर्म निर्धारण का कारण बतलाया है इन कारणों पर विशेष ध्यान देने पर यहां यह स्पष्ट मान्यता प्रकट हो जाती है कि मनु कर्मों के आधार पर ही वर्ण–व्यवस्था मानते हैं, जन्म के अनुसार नहीं। क्योंकि, यदि जन्म से ही व्यक्ति श्रेष्ठ–अश्रेष्ठ, उच्च–निम्न निर्धारित हो गये तो उससे समाज या जगत् की क्या वृद्धि होगी? केवल उच्च लोगों की वृद्धि होगी। अपितु वृद्धि भी कहां होगी, जो जिस स्तर का होगा वहीं रहेगा। उसे अपने स्तर की उन्नति का अवसर ही कहां मिलेगा? यदि जन्मना वर्ण–व्यवस्था मानें तो इन कारणों का कथन निरर्थक होगा। इन कारणों के कथन से एक और संकेत मिलता है– वह यह कि चार वर्णों के अनुसार प्रजाएं नहीं बनायी अपितु प्रजाओं की वृद्धि के लिये (प्रजाओं के लिए) चार वर्ण बनाये अर्थात् पहले प्रजाएं बनीं जो जन्मना समान थीं, फिर उनमें से गुण कर्मानुसार चार वर्ण निर्मित किये गये, जिससे समाज व्यवस्था में बंधकर वृद्धि करता रहे। इस प्रयोगपद्धति से भी कर्मणा वर्णव्यवस्था सिद्ध होती है।

(6) 'वर्ण' शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति ही यह सिद्ध करते हैं कि मनु की व्यवस्था जन्मना न होकर कर्मणा है। निरुक्त में 'वर्ण' शब्द की व्युत्पत्ति दी है...'वर्णो वृणोतेः[12] अर्थात् कर्मानुसार जिसका वरण किया जाये वह 'वर्ण' है। इस पर प्रकाश डालते हुए महर्षि दयानन्द ने भी स्पष्ट किया है–

''वर्णो वृणोतेरिति निरुक्तप्रामाण्याद्वरणीया वरीतुमर्हाः।
गुणकर्माणि च दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णा ।''[13]

अर्थात्–गुण–कर्मों को देखकर यथायोग्य अधिकार जिसको दिया जाये वह वर्ण है।

(7) वर्णों के नाम उनके कर्मानुसार रखे गये हैं। नामों की व्युत्पत्ति स्वयं उनके कर्मों का बोध कराती है (इसके लिए विस्तृत विवेचन मनुस्मृति के 1.87–91 श्लोकों पर द्रष्टव्य है)।

(क) 'ब्राह्मण' नाम कर्मणा वर्णव्यवस्था का सूचक

वर्णों के नामों की व्याकरणानुसारी रचना और व्युत्पत्ति से भी यह बात सिद्ध होती है कि मनु ने कर्मानुसार ही वर्णों का नाम करण दिया है और नामों से वर्णों के कर्मों का भी बोध होता है। 'ब्रह्मन्' प्रातिपदिक से 'तदधीते तद्वेद'[14] अर्थ में 'अण्' प्रत्यय के योग से 'ब्राह्मण' शब्द बनता है। इसकी व्युत्पत्ति है–'ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरस्य उपासनेन च सह वर्तमानो विद्यादि उत्तमगुणयुक्तः पुरुषः अर्थात् वेद और परमात्मा के अध्ययन और उपासना में तल्लीन रहते हुए विद्या आदि उत्तम गुणों को धारण करने से व्यक्ति 'ब्राह्मण' कहलाता है। मनु ने भी इन्हीं कर्मों को ब्राह्मण के प्रमुख कर्मों के रूप में वर्णित किया है।

ब्राह्मणग्रन्थों के वचनों में भी वर्णों के कर्मों का वर्णन पाया जाता है। निम्न वचनों में ब्राह्मण के कर्त्तव्य उद्दिष्ट हैं–

(अ) ''आग्नेयो ब्राह्मणः''।[15] ''आग्नेयो हि ब्राह्मणः'' (काठ.ब्रा. 29.10) ब्राह्मण श्रेष्ठ व्रतों= यज्ञादि से सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण होता है

(आ) ''ब्राह्मणो व्रतभृत्''।[16] ''व्रतस्य रूपं यत् सत्यम्''[17] ब्राह्मण श्रेष्ठ व्रतों= कर्मों को धारण करने वाला होता है। सत्य बोलना व्रत का एक रूप है।

(इ) ''गायत्रौ वै ब्राह्मणाः'' (ऐ.ब्रा. 1.28)। ''गायत्रो यज्ञः'' (गो.ब्रा. पू. 4.24)। ''गायत्रो वै बृहस्पतिः'' (ता.ब्रा. 5.1.15) ब्राह्मण गायत्र, होता है। गायत्र वेद, यज्ञ और परमात्मा को कहते हैं।

(ख) 'क्षत्रिय' नाम कर्मणा व्यवस्था का सूचक

(1) क्षणु–हिंसा अर्थ वाली (तनादि) धातु से 'क्त' प्रत्यय के योग से 'क्षतः' शब्द की सिद्धि होती है और 'क्षत' उपपद में 'त्रैङ्' धातु से पालन करने अर्थ में (भ्वादि) 'अन्येष्वपि दृश्यते'[18] सूत्र से 'उः' प्रत्यय, पूर्वपदान्त्याकारलोप होकर 'क्षत्र' शब्द बना। 'क्षत्र एव क्षत्रियः' स्वार्थ में 'इयः' होने से 'क्षत्रियः' अथवा क्षत्रस्य–अपत्यं वा, 'क्षत्राद् घः'[19] सूत्र से जन्म लेने अर्थ में 'घः' प्रत्यय होकर क्षत्रिय शब्द बना। 'क्षदति रक्षति जनान् क्षत्रः' जो जनता की रक्षा का कार्य करता है अथवा, 'क्षण्यते हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन स 'क्षतः' =घातादिः, ततस्त्रायते रक्षतीति क्षत्रः= आक्रमण, चोट, हानि आदि से लोगों की रक्षा

करने वाला होने से क्षत्रिय को 'क्षत्रिय' कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में –'क्षत्रं राजन्यः' (ऐ.ब्रा. 8.2, 3.4) 'क्षत्रस्य वा एतद्रूपं यद् राजन्यः' (श.ब्रा. 13.1.5.3)= क्षत्रिय 'क्षत्र' का ही रूप है, जो प्रजा का रक्षक होता है।
(2) यहां अपत्यार्थ में 'इय्' आदेश के योग से क्षत्रिय आदि शब्द बनाने में यह शंका उत्पन्न होती है कि क्या मनु जन्म के आधार पर वर्ण मानते हैं? इस शंका के निराकरण के लिए प्रमाण पुष्ट समाधान है। वंश केवल जन्म से ही नहीं अपितु विद्याजन्म से भी वंश चलता है। अष्टाध्यायी (2.1.19) में 'संख्यावंश्येन' सूत्र में विद्या से जन्म माना है। मनुस्मृति (2. 119–123) श्लोकों में स्पष्टतः विद्या के आधार पर जन्म माना है। इस प्रकार गुणग्राहिता, कार्यकारणभाव और विद्या के आधार पर भी अपत्य आदि सम्बन्ध होते हैं। जैसे सूर्य, वरूण आदि की कोई पत्नी या अपत्य आदि नहीं होते, किन्तु फिर भी कार्य–करण और गुणग्राहिता आदि के आधार पर अदिति का पुत्र आदित्य, सूर्य की पत्नी सूर्या आदि, और वरूणानी, मैत्रावरूणः आदि प्रयोग होते हैं।
(3) क्षत्रिय के विस्तृत कर्त्तव्यों का वर्णन 7.1 से 9.225 श्लोकों में है।

(ग) 'वैश्य' नाम कर्मणा व्यवस्था का सूचक

(1) ''विशः मनुष्यनाम'' (निघ. 2.3) उससे भावार्थ में 'यत्' उससे स्वार्थ में 'अण्' अथवा 'विश' प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में 'यञ्' छान्दस् प्रत्यय से 'वैश्य' शब्द बना। ''यो यत्र–तत्र व्यवहारविद्यासु प्रविशति सः 'वैश्यः' व्यवहारविद्याकुशलः जनो वा'' जो विविध व्यावहारिक व्यापारों में प्रविष्ट रहता है या विविध विद्याओं में कुशल जन 'वैश्य' होता है।
ब्राह्मण ग्रन्थों में– ''एतद् वै वैश्यस्य समृद्धं यत् पशवः''[20] ''तस्मादु बहुपशुर्वैश्वदेवो हिजागतो वैश्यः''[21] पशुपालन से वैश्य की समृद्धि होती है, यह वैश्य का कर्त्तव्य है।
(2) वैश्य के कर्त्तव्यों का वर्णन विस्तार से द्रष्टव्य है मनुस्मृति 9.225–333 में।

(घ) 'शूद्र' नाम कर्मणा व्यवस्था का सूचक

(1) शुच्– शोकार्थक (भ्वादि) धातु से शुचेर्दश्च' (उणा. 2.19) सूत्र में 'रक्' प्रत्यय, उकार को दीर्घ, च को द होकर 'शूद्र' शब्द बनता है। शूद्रः=शोचनीयः शोच्यां स्थितिमापन्नो वा, सेवायां साधुर् अविद्याादिगुणसहितो मनुष्यो वा' =शूद्र वह व्यक्ति होता है जो अपने अज्ञान के कारण किसी प्रकार की उन्नत स्थिति को नहीं प्राप्त कर पाया और जिसे अपनी निम्न स्थिति होने की तथा उसे उन्नत करने की सदैव चिन्ता बनी रहती हैं, अथवा स्वामी के द्वारा जिसके भरण की चिन्ता की जाती है। ऐसा सेवक मनुष्य शूद्र है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यही भाव मिलता है– ''असतो वा एष सम्भूतो यत् शूद्रः''।[22] असतः=अविद्यातः। अज्ञान और अविद्या से जिसकी निम्न जीवन स्थिति रह जाती है, जो केवल सेवा आदि कार्य ही कर सकता है, ऐसा मनुष्य शूद्र होता है।
(2) वह उत्तम कर्मों से उच्च वर्ण को भी प्राप्त कर सकता है।[23]
(3) शूद्र के कर्त्तव्यों का विस्तृत वर्णन 9.334–335 श्लोकों में है। उन श्लोंको से मनु की शूद्र–सम्बन्धी यह मान्यता और भी स्पष्ट हो जाती है कि वे शूद्र को जन्मना नहीं मानते तथा न घृणास्पद मानते हैं।
(8) मनु कर्मणा वर्णव्यवस्था मानते हैं इसमें अन्य प्रमाण भी हैं–
(क) शूद्र को वे हीन नहीं मानते अपितु 'शुचिः'=पवित्र 'उत्कृष्ट शुश्रूषुः' आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।[24] सबके घरों में सब प्रकार की सेवा करने वाला भला अपवित्र, अछूत, हीन कैसे हो सकता है? (ख) मनु व्यक्ति को शूद्र इसलिए मानते हैं कि वह पढ़ता नहीं। उसका वेदाध्ययन रूपी दूसरा ब्रह्मजन्म नहीं होता। मनुस्मृति (2.126) में अज्ञानता के कारण ही यह कथन किया है– ''यथा शूद्रस्तथैव सः''। ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यों को द्विज इसलिए कहा जाता है कि उनका ब्रह्मजन्म रूपी दूसरा जन्म होता है– 'द्विर्जायते इति द्विजः। शूद्र को 'एकजातिः' न पढ़ने के आधार पर कहा जाता है। देखिए प्रमाण– 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णाः द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः।।[25] (ग) मनु कर्मों के आधार पर मनुष्यों के दो वर्ग मानते हैं– जो श्रेष्ठ धर्माकुल आर्य परम्पराओं में दीक्षित हैं, वे चारों वर्ण आर्य हैं। (2) इनमें अदीक्षित शेष सब दस्यु हैं (10.45)। (घ) मनु कर्म के आधार पर ही व्यक्ति को श्रेष्ठ=आर्य और अश्रेष्ठ=अनार्य मानते हैं। मनुस्मृति (10.57–58) में वे कर्मों के आधार पर इनकी पहचान करने को कहते हैं। ये सब बातें मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था की मान्यता को सिद्ध करती हैं।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति 1.198
2. वही, 10.65
3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.5.10–11
4. सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास
5. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
   स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।। मनु. 2.168
6. न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
   स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ।। मनु. 2.103
7. उत्तमानुत्तमान्गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन्।
   ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्ययवायेन शूद्रताम्।। मनु. 4.245
8. मनु. 11.191–196
9. मनु. 2.136, 137, 154, 156
10. मनु. 1.31
11. मनु. 1.87
12. निरुक्त 2.1.4

13. ऋग्वेद भा. भू. वर्णाश्रमधर्मविषय
14. अष्टा. 4.2.59
15. ताण्ड्य ब्राह्मण 15.4.8
16. तैत्तिरिय संहिता 1.6.7.2
17. शतपथ ब्राह्मण 12.8.2.4
18. अष्टा. 3.2.101
19. अष्टा. 4.1.138
20. ता.ब्रा. 18.4.6
21. ता.ब्रा. 6.1.10
22. तै.ब्रा. 3.2.3.9
23. मनु. 9.35, 10.65
24. मनु. 9.335
25. मनु. 10.4